सन 1857 की क्रांति में झाँसी की वीरांगनाओं का योगदान

डॉ. रमा आर्य[1]

शोधसार - विश्व में बुंदेलखंड की भूमि 'कलम, कला, किसान और कृपाण की धरती' के नाम से पहचानी जाती रही है। जब हमारा भारत देश ईस्ट इंडिया कंपनी और ब्रिटिश सरकार का गुलाम हुआ तब इसी बुंदेलखंड की धरती से अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ झाँसी की रानी वीरांगना लक्ष्मीबाई ने 'सुराज के लिए लड़िबो चहिए' की देशप्रेम की मानसिकता से राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्त्व किया। सन 1857 की क्रान्ति में झाँसी की वीरांगनाओं में झाँसी की रानी वीरांगना लक्ष्मीबाई, मोतीबाई, काशीबाई, सुंदर और मुंदर आदि का उल्लेखनीय योगदान रहा है।

कुंजी शब्द - सन 1857 की क्रांति, प्रथम स्वतंत्रता संग्राम, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम, झाँसी, झाँसी की वीरांगना, झाँसी की रानी, महारानी लक्ष्मीबाई, बाईसा, नारी सेना, मोतीबाई, काशीबाई, सुंदर, मुंदर।

प्रस्तावना - विश्व में बुंदेलखंड की भूमि 'कलम, कला, किसान और कृपाण की धरती' के नाम से पहचानी जाती रही है। भारत और विश्व के आदिग्रंथ वेंदो की रचना यहीं कालपी जिला जालौन में महर्षि वेदव्यास ने की और फिर महर्षि वाल्मीकि ने करीला जिला अशोकनगर में रामायण की रचना की और यहीं वाल्मिकी आश्रम में माँ सीता ने लव-कुश को जन्म दिया। यहीं बीजौर-बाघाट जिला निवाड़ी में गुरू द्रोणाचार्य ने अर्जुन को धनुर्विद्या सिखाई। इसी बुंदेलखंड में महोबा में बुंदेली के आदिकवि जगनिक ने 'आल्हा चरित' रचकर विश्व को आल्हा-ऊदल की शौर्यगाथा का रसपान कराया। और फिर जब हमारा भारत देश ईस्ट इंडिया कंपनी और ब्रिटिश सरकार का गुलाम हुआ तब इसी बुंदेलखंड की धरती से अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ झाँसी की रानी वीरांगना लक्ष्मीबाई ने 'सुराज के लिए लड़िबो चहिए' की देशप्रेम की मानसिकता से राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्त्व किया। इस स्वतंत्रता संग्राम में बुंदेलखंड की रियासतों समेत दिल्ली, भोपाल, लखनऊ, प्रयागराज के शासकों ने भाग लिया और अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिए। हम लोग मानते हैं कि सन 1857 की क्रांति सत-प्रतिशत भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम था। इस स्वतंत्रता संग्राम की शुरूआत 5 जून सन 1857 को झाँसी की रानी वीरांगना लक्ष्मीबाई के नेतृत्त्व में झाँसी से हुई थी। झाँसी की रानी को हम

---

[1] सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), श्री पीताम्बरा पीठ संस्कृत महाविद्यालय, दतिया, मध्य प्रदेश

लोग 'बाईसाब' के नाम से पुकारते हैं। आइये जानते हैं सन 1857 की क्रांति में झाँसी की वीरांगनाओं का योगदान के बारे में... ।

- **सन 1857 की क्रांति में झाँसी की वीरांगनाओं का योगदान -**

सन 1857 की क्रान्ति में झाँसी की वीरांगनाओं का योगदान विश्व इतिहास की अमूल्य धरोहर है। झाँसी की रानी के किले के पास बने महारानी लक्ष्मीबाई पार्क, झाँसी में स्थापित झाँसी की रानी की प्रतिमा के शिलालेख में लिखा है - "प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की दीपशिखा महारानी लक्ष्मीबाई, जिनके आत्मोसर्ग ने भारतीय महिलाओं का मस्तक गौरवान्वित किया।"[1] झाँसी की रानी के संदर्भ में लिखे इस कथन से सिद्ध होता है कि सन 1857 की क्रांति यानी प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की शुरुआत झाँसी की रानी के द्वारा झाँसी से हुई थी। मेरठ से मंगल पांडेय द्वारा नहीं। मंगल पांडेय जैसे सैनिकों द्वारा चर्बी लगे कारतूस के विरोध की घटना सिर्फ सिपाही विद्रोह थी, क्रांति बिल्कुल भी नहीं। सन 1857 की क्रान्ति में झाँसी की वीरांगनाओं में झाँसी की रानी वीरांगना लक्ष्मीबाई, मोतीबाई, काशीबाई, सुंदर और मुंदर आदि का उल्लेखनीय योगदान रहा है। इनके योगदान को हम इस प्रकार जान सकते हैं। सबसे पहले हम विश्व में नारी सशक्तिकरण की अनोखी मिशाल, महान वीरांगना झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के योगदान के बारे में जानते हैं। झाँसी की रानी की वीरता के किस्से आज भी विश्व के हर गाँव और शहर में सुने जाते हैं। उनकी शौर्यगाथा को इतिहासकारों, सरकारों, साहित्यकारों और आम जनता ने सहेजकर रखा है।

कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान की विश्वप्रसिद्ध कविता 'झाँसी की रानी' की ये पंक्तियाँ रानी लक्ष्मीबाई की वीरता की कहानी सबको सुनाती है -

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आयी फिर से नई जवानी थी,
गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी,
चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी।
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।[2]

सन 1857 की क्रान्ति में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के विरुद्ध ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना की अगुआई करने वाले जनरल ह्यूरोज ने अपनी आत्मकथा में रानी लक्ष्मीबाई की वीरता को नमन करते हुए लिखा है - "झाँसी की रानी विद्रोहियों में मर्द थीं। रानी मर्दों की तरह कपड़े पहनती थीं और अपने सिर पर पगड़ी भी और साथ ही मर्दों की ही तरह घुड़सावरी भी करना जानती थीं।[3]

ऐसी थीं झाँसी की रानी, महान वीरांगना लक्ष्मीबाई जिनकी वीरता की प्रशंसा उनके दुश्मन अंग्रेज सैन्य अफसर जनरल ह्यूरोज ने भी की है। झाँसी की रानी ने "भाग-भाग फिरंगी भाग... झाँसी की रानी आयी", "मैं अपनी झाँसी नहीं दूँगी" और "सुराज के लिए लड़िबो चहिए" जैसे नारे बुलन्द कर एक ओर अंग्रेजी हुकूमत की जड़ें हिला दीं तो दूसरी तरफ "हर हर महादेव" का नारा बुलन्द कर भारतीय संस्कृति की रक्षा की मिशाल कायम की।

झाँसी के इतिहासकार जानकी शरण वर्मा '1857 की अमर ज्योति वीरोत्तमा रानी लक्ष्मीबाई और उनकी झाँसी' में झाँसी की रानी के योगदान के बारे में लिखते हैं - "1857 की जनक्रान्ति की अग्रणी सेनानायक, 'सुराज के लिए लड़िबो चहिए' की प्रेरणादायिनी, समरांगण में अपनी तलवार से अंग्रेजों में दहशत पैदाकर, भीरुओं में शक्ति पैदाकर, स्त्री समाज का भाल ऊँचा करने वाली, काशीबाई, सुन्दर और मुन्दर की प्राणप्रिय सहेली, देश की स्वतंत्रता की रक्षा करने वाली, आन-बान और शान की न मिटने वाली ज्योति की चमक थीं - झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई।[4]

झाँसी के राजा और पति गंगाधर राव के निधन के बाद रानी लक्ष्मीबाई ने झाँसी राज्य के शासन की बागडोर अपने हाथों में संभाल ली थी। इस संदर्भ में उपन्यासकार डॉ० वृन्दावनलाल वर्मा ने 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' में लिखा है - "लक्ष्मणराव प्रधानमंत्री, तोपें ढालने वाला भाऊ, प्रधान सेनापति जवाहर सिंह, पैदल सेना के लिए कर्नल - एक दीवान रघुनाथ सिंह, दूसरा मुहम्मद जमा खाँ, तीसरा खुदाबख्श, घुड़सवारों की प्रधान स्वयं रानी, कर्नल - सुन्दर, मुन्दर और काशीबाई, तोपखाने का प्रधान गुलाम गौस खाँ, नायब दीवान दूल्हाजू, न्यायाधीश नाना भोपटकर, मोरोपन्त कमठाने के प्रधान, जासूसी विभाग मोतीबाई के हाथ में और नायब-जूही।"[5]

अपने दत्तक पुत्र दामोदर राव को उत्तराधिकारी का दर्जा हेतु रानी लक्ष्मीबाई ने कई प्रयास किए, लेकिन फिरंगियों की कुटिल नीति के कारण पुत्र को उत्तराधिकार का दर्जा दिखाने में नाकामयाब रहीं। इस संदर्भ में इतिहासकार जानकी शरण वर्मा लिखते हैं - "बाईसाहिबा राजा के निधन के बाद से ही अंग्रेज सरकार को अपने पुत्र को उत्तराधिकारी बनाने के लिए अनेक पूर्व सन्धि-पत्रों का हवाला देते हुए प्रार्थना पत्र प्रस्तुत कर चुकी थीं, किन्तु वह रानी को अंग्रेजी शासन का हितैषी नहीं मानते थे। इसलिए अंग्रेजी शासन ने पूर्व में की गई सन्धियों की उपेक्षा कर 27 फरवरी,1854 को झाँसी को अंग्रेजी राज्य में मिलाने की घोषणा कर बुन्देलखण्ड के राजनीतिक अभिकर्त्ता मालकम को सूचना भेज दी। विलय की सूचना मिलते ही उसने यह सूचना झाँसी के राजनीतिक अभिकर्त्ता एलिस को भेज दी, जिसने 7 मार्च, 1854 को घोषणा कर दी कि 'झाँसी राज्य की प्रजा ध्यान दे कि भविष्य में वह अंग्रेजी राज्य के अधीन रहेगी और अपने सभी कर आदि सरकार के प्रतिनिधि मेजर एलिस को देगी।' एलिस द्वारा झाँसी विलय की घोषणा होते ही रानी ने क्रोधित हो कहा - 'मैं झाँसी नहीं दूंगी'। और अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध की तैयारी में जुट गईं।

सदाशिवराव उन दिनों झाँसी में ही निवास करता था। 31 मई को कुछ होने वाला है, इसकी खबर उसे लग गई तो उथल-पुथल की परिस्थिति का लाभ उठाने के लिए उसने परेला से तीन हजार सैनिक लेकर झाँसी के अधीन करैरा दुर्ग पर अपना आधिपत्य जमा लिया। करैरा में थानेदार और तहसीलदार नियुक्त थे। उनको सदाशिवराव ने मार भगाया और आस-पास के जागीरदारों से रुपया वसूल कर महाराजा की पदवी ग्रहण कर ली। जिन जागीरदारों ने उसे महाराजा स्वीकार नहीं किया, सैनिक बल के आधार पर उसने उनकी जागीरदारी समाप्त कर दी। सदाशिवराव के करैरा दुर्ग पर अधिकार किए जाने की सूचना जासूसी विभाग की प्रमुख मोतीबाई ने 13 जून की रात को रानी को जैसे ही दी, रानी तुरन्त घुड़सवार सैनिकों को लेकर करैरा पहुँच गईं। उन्होंने करैरा किले को चारों तरफ से घेर लिया। रानी के बहादुर सैनिकों से किले को घिरा देख सदाशिवराव बिना युद्ध किए हुए नरवर भाग गया, परन्तु रानी ने नरवर दुर्ग को घेर कर सदाशिवराव को पकड़ लिया और उसे झाँसी दुर्ग में कैदी के रूप में बन्द कर दिया।"[6]

रानी लक्ष्मीबाई के स्वतंत्रता संघर्ष के बारे में इतिहासकार जानकी शरण वर्मा लिखते हैं - "कालपी पर अंग्रेजों का आधिपत्य हो जाने पर लक्ष्मीबाई, राव साहब किसी प्रकार ग्वालियर से 75 किलोमीटर दूर गोपालपुरा गाँव पहुँच गए। समाचार मिलते ही तात्या और बाँदा के नवाब भी गोपालपुरा पहुँच गए। अंग्रेजों से बचने का केवल एक ही रास्ता था कि पुनः उनसे युद्ध किया जाए। इस विषय पर विचार कर युद्ध की रणनीति तैयार की गई। रानी का सुझाव था कि अंग्रेजों से सफलतापूर्वक युद्ध के लिए ग्वालियर दुर्ग पर आधिपत्य जमाया जाए। उस समय ग्वालियर जयाजी राव के अधीन था जो स्वातंत्र्य सैनिकों को दबाने के लिए हर प्रकार से धन और सैनिकों से अंग्रेजों की सहायता किया करता था। उसे किस प्रकार अंग्रेजों के विरुद्ध किया जाए, इस पर गहन चिन्तन कर रणनीति निर्धारित की गई। यद्यपि दिल्ली में 1857 में अंग्रेजों के खिलाफ युद्ध छिड़ जाने से उसकी लपटों ने ग्वालियर के सैनिकों को भी अंग्रेजों के विरुद्ध स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए उत्प्रेरित कर दिया था। परिणामतः 14 जून, 1857 को ग्वालियर की कान्टीजेंट सेना ने छावनी में विद्रोह कर आग लगा दी, जिसमें बहुत से सैनिक और अधिकारियों को प्राण देने पड़े, परन्तु किसी प्रकार जयाजी राव और उसके चतुर मंत्री सलाहकार दिनकर राव के समझाने पर भड़की हुई सेना शान्त सी हो गई, परन्तु उनके मन में स्वतंत्रता की आग अन्दर ही अन्दर सुलगती रही जो समय पाकर प्रज्वलित हो गई। 3 जून को फूलबाग में दरबार हुआ, जिसमें सभी सेनाओं के अधिकारी व दरबारी सम्मिलित हुए। पेशवा का राज्याभिषेक किया गया और उपहार भेंट किए गए। तात्या टोपे को सेनापति घोषित किया गया। सिंहासन पर आरूढ़ होते ही राव साहब मौज- मस्ती में दिन गुजारने लगे। रानी चाहती थीं कि पेशवा जीत को स्थायी करने के लिए सेना को सुसज्जित करें और अनुशासन की ओर ध्यान दें, परन्तु वे दायित्व और कर्तव्य से च्युत होकर रंगरेलियाँ मनाने में ही मग्न

रहे। पन्द्रह दिन पश्चात् अंग्रेजों ने विशाल फौज के साथ ग्वालियर पर हमला किया। उसका सामना करने के लिए रानी फिर से डट गईं। पूर्व दिशा के द्वार की रक्षा का भार उन्हें सौंपा गया था। अंग्रेजों की ओर से इस मोर्चे का दायित्व जनरल स्मिथ पर था। रानी और उनकी सैनिक सहेलियाँ काशी और मुन्दर घोड़े पर सवार हुईं। स्मिथ ने रानी के मोर्चे पर अनेक बार हमले किए, परन्तु उसकी दाल नहीं गली तो उसने अपना मोर्चा दूसरी ओर मोड़ा। मुन्दर घोड़े पर सवार होकर एक टीले पर स्मिथ की सेना की निगरानी कर रही थी। मेक्सफर्सन के अनुसार, अचानक उस पर तलवार का वार हुआ तो 'बाई साहिबा मरी' यह उसके मुख से निकला। उसकी करुण पुकार से रानी का हृदय विदीर्ण हो गया। अपने प्राणों की परवाह न कर रानी ने मुन्दर के हत्यारे पर वार कर उसे मौत के घाट उतार दिया। फिर वे तेजी से आगे बढ़ीं। रानी का घोड़ा मुरार ग्वालियर मार्ग के मोड़ पर नाला आ जाने से रुक गया। इतने में ही अंग्रेज सिपाहियों की ओर से गोलियाँ दागी गई। एक गोली रानी की बगल में लगी। रानी घायल शेरनी की भाँति ऐसे युद्ध करती रहीं कि उनकी एक आँख भी जाती रही। गुल मुहम्मद, रघुनाथ सिंह और देशमुख रानी को पास ही में स्थित बाबा गंगादास की कुटी में ले गए। वहाँ चिता बनाई गई। रानी ने उस पर बैठकर स्वयं अग्नि प्रज्वलित की। इस प्रकार क्रान्ति की अधिष्ठात्री रानी लक्ष्मीबाई ने 18 जून, 1858 को अपना बलिदान कर दिया।"[7]

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के स्वतंत्रता संग्राम में योगदान को वीर सावरकर इस प्रकार रेखांकित करते हैं - "रानी लक्ष्मीबाई अपना लक्ष्य पूरा कर गई। ऐसा एक जीवन सम्पूर्ण राष्ट्र का मुख उज्ज्वल करता है। वह सब गुणों की निचोड़ थीं। एक महिला, जिसने जीवन के 23 बसन्त ही देखे थे, कोमलांगी, मधुर, विशुद्ध, उसके हृदय में देशभक्ति रत्नदीप की तरह प्रकाशवान थी। अपने देश भारत पर उसे गर्व था। युद्ध कौशल में वह अद्वितीय थी। विश्व में शायद ही कोई ऐसा देश होगा, जो ऐसी देवी को अपनी कन्या और रानी कहने का अधिकारी होगा। इंग्लैंड के भाग्य में यह सम्मान अब तक नहीं बदा है। 1857 के स्वातंत्र्य समर पर ज्वालामुखी की यह अन्तिम ज्वाला है।"[8]

सन 1857 की क्रांति में झाँसी की वीरांगनाओं में रानी लक्ष्मीबाई के अलावा मोतीबाई, काशीबाई, सुंदर और मुंदर का नाम मुख्य रूप से लिया जाता है। मोतीबाई राजा गंगाधरराव की दरबारी नर्तकी और तोपची थी। जबकि काशीबाई, सुंदर और मुंदर तीनों रानी लक्ष्मीबाई की वीर सहेलियाँ थीं। इन चारों ने रानी लक्ष्मीबाई की सेना में रहकर अदम्य साहस का परिचय दिया।

मोतीबाई के बारे में भारत सरकार द्वारा संचालित एवं प्रकाशित 'आजादी का अमृत महोत्सव' नामक पोर्टल पर लिखा गया है - "एक साधारण नर्तकी से नारी शक्ति बनकर रानी की नारी सेना में सामिल हुई थी। घुड़सवारी, तलवार कला और तोप चलाने में उसे महारथ हासिल थी। जिसका सफल प्रदर्शन उसने झाँसी पर ओरछा सेना का प्रथम आक्रमण में और ह्यूरोज की अंग्रेजी सेना के विरूद्ध अंतिम साँस तक लड़ते हुए किया था। 21 मार्च 1858 ई0 के युद्ध में मोतीबाई,

लक्ष्मीबाई की संरक्षा में उनके साथ रहीं। कम्पनी सेना के जबरदस्त हमले को देखकर रानी ने मोतीबाई को गुलाम गौस के साथ तोप संचालन पर लगा दिया। वीरांगना मोतीबाई ने पूरी दक्षता के साथ इस कार्य को निभाया, जिससे अंग्रेज सेना तोप के गोलों की मार से किले के निकट नहीं आ पा रही थी। कड़क बिजली से निकले गोले गोरों के काल बनकर उन पर गिर रहे थे। काफी संघर्ष के बाद एक गोला मोतीबाई को लगा और वह शहीद हो गयी। रानी लक्ष्मीबाई ने आदर के साथ उनको खुदाबक्स की समाधि के पास किले में दफन कर उसे सलाम किया। मोतीबाई की मजार पर आज हजारों लोग श्रद्धा के साथ नमन कर उसके राष्ट्रधर्म से प्रेरणा लेते हैं।"[9]

भारत सरकार द्वारा संचालित एवं प्रकाशित 'आजादी का अमृत महोत्सव' नामक पोर्टल पर इतिहासकार गिरजाशंकर कुशवाहा ने भी वीरांगना मोतीबाई की जीवनी में लिखा गया है - "वीरांगना मोतीबाई ने 1857 की क्रांति में एक प्रमुख हस्ती, झाँसी की रानी वीरांगना लक्ष्मीबाई की कट्टर सहयोगी के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मोतीबाई, जो मूल रूप से झाँसी के राजा श्रीमंत गंगाधर राव के रंगमंच की नर्तकी और अभिनेत्री थीं, रानी की रणनीति में एक प्रमुख व्यक्ति बन गईं। अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका के बारे में जानने पर, रानी लक्ष्मीबाई ने भावनात्मक रूप से मोतीबाई से कहा कि उन्हें झाँसी के हित में दुश्मन के बारे में विशेष जानकारी इकट्ठा करने के लिए ब्रिटिश अधिकारियों से संपर्क स्थापित करना होगा। उन्होंने मोतीबाई से नवाब अली बहादुर के पास जाने और उन्हें प्रभावित करने का प्रयास करने का आग्रह किया। अंग्रेजों के मित्र होने के नाते नवाब साहब उनके साथ संवाद स्थापित करने के लिए एक पुल का काम कर सकते थे। नवाब साहब द्वारा आयोजित बैठकों के माध्यम से, उनका उद्देश्य सैन्य गतिविधियों और अन्य महत्वपूर्ण योजनाओं पर खुफिया जानकारी प्राप्त करना था। नवाब साहब ने झाँसी के मजिस्ट्रेट गॉर्डन से मोतीबाई की बहुत प्रशंसा की, जिससे उनका विश्वास हासिल हो गया। मोतीबाई ने बाद में रानी लक्ष्मीबाई के साथ नवाब साहब की गतिविधियों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी साझा की, जिससे उनकी रानी के लिए एक जासूस के रूप में उनके साहस और समर्पण का प्रदर्शन हुआ।

मोतीबाई भी सेना में सैनिक पद पर थीं। उन्होंने भवानी शंकर तोप को कुशलतापूर्वक चलाया। 20 मार्च 1858 को जनरल ह्यूरोज ने झाँसी के पास कैमासिन देवी के मंदिर के पास एक शिविर स्थापित किया। रानी लक्ष्मीबाई ने दूरबीन से देखते हुए आसन्न आक्रमण का विचार किया। मोतीबाई ने घुड़सवार हमले का प्रस्ताव रखा। लड़ाई 23 मार्च 1858 को शुरू हुई, जिसमें गोलियाँ दीवारों में घुस गईं। दुर्भाग्य से, मोतीबाई को कंधे में गंभीर चोट लगी, जिससे वह गिर पड़ीं। एक साथी सिपाही ने उसे बचाया और घर के अंदर ले आया। शाश्वत विश्राम से पहले उसने रानी की एक झलक देखी। दुखद बात यह है कि 3 अप्रैल 1858 को वीरांगना मोतीबाई का वीरतापूर्ण अंत हुआ।

उनकी समाधि झाँसी किले की सीमा के भीतर बनाई गई थी, जहाँ वह चिर निद्रा में विश्राम करती हैं, जो उनकी अटूट भक्ति और बलिदान का प्रतीक है।"[10]

रानी लक्ष्मीबाई की वीर सहेलियों काशीबाई, सुंदर और मुंदर के बारे में इतिहासकार जानकी शरण वर्मा लिखते हैं - "1857 की जंगे आजादी में वीरांगना लक्ष्मीबाई के कुशल सैन्य संचालन में सभी जातियों और वर्ग के पुरुषों व स्त्रियों ने अंग्रेजों के विरुद्ध लोहा लिया। इस महासमर में पिछड़े लोगों व दलित वर्ग की महिलाओं की समान भागीदारी रही। उनका पराक्रमी, तेजस्वी और निर्मल चरित्र कालचक्र के कारण दब गया है, जिसे उजागर करने की अति आवश्यकता है। प्रस्तुत है ऐसी ही वीर महिला सैनिकों - काशीबाई, सुन्दर और मुन्दर की शौर्यगाथा, जिन्होंने बलशाली अंग्रेजी फौज को मजा चखा दिया था। कृष्णराव की मृत्यु के पश्चात उनके पुत्र रामचन्द्र राव झाँसी के हकदार हुए, लेकिन नाबालिग होने के कारण शासन-सूत्र उनकी माँ सखूबाई के हाथ में रहा। बालिग होने पर रामचन्द्र राव ने राजा की स्थायी उपाधि पाते ही शासन सूत्र पूरे तौर पर अपने हाथ में ले लिया। सखूबाई को अपने हाथ से शासन-सूत्र निकल जाना बहुत अखरा। शासन-सूत्र को अपने हाथ में बनाए रखने के लिए उसने पुत्र रामचन्द्र राव को मार डालने के लिए षड्यंत्र रचा, परन्तु उसके षड्यंत्र का पता चलने पर एक मराठा युवक लालू कोदोलकर और मऊ के आनन्दराव ने उसे बचा लिया और वे झाँसी छोड़कर चले गए। कुछ दिनों बाद इन तीनों के एक-एक लड़की पैदा हुई, जिनके नाम काशीबाई, मुन्दर और सुन्दर था। इनका पालन-पोषण बड़ी दरिद्रता में हुआ। लालू कोदोलकर के रिश्तेदारों को पुनः झाँसी बुला लिया गया। गंगाधरराव का विवाह मनु के साथ झाँसी में सम्पन्न हुआ। नगर वाले गणेश मन्दिर में सामन्ती वर पूजा आदि रीतियाँ पूरी की गईं। विवाह की रस्म के बाद अपरिचित तीनों बालिकाएँ जिनका नाम सुन्दर, मुन्दर और काशीबाई थे, उपस्थित हुई। लक्ष्मीबाई ने उनसे पूछा, 'तुम कौन हो?' उन्होंने उत्तर दिया, 'हम आपकी दासियाँ हैं, जो सदैव आपके पास रहा करेंगी।' रानी ने उन्हें अपनी सहेलियाँ बना लिया और वे प्रतिदिन अपनी विश्वासपात्र सहेलियों - सुन्दर, मुन्दर और काशीबाई से रात्रि 10 बजे भेंट कर हाल-चाल मालूम किया करती थीं। ये तीनों किले के महल में रानी के साथ रहा करती थीं और रानी के प्रति समर्पित थीं और रानी की आज्ञा का पालन करती हुई मरने के लिए आगे-पीछे नहीं सोचती थीं। रानी की दासी होने के लिए लड़कियाँ अन्ब्राह्मण जातियों से रंग-रूप के आधार पर चुनी जाती थीं और उनको आजीवन रानी के साथ कुमारी रहना पड़ता था। यदि उनमें से कोई विवाह कर लेतीं तो उसे महल की नौकरी छोड़ना पड़ती थी। लेकिन रानी ने कभी भी उन्हें दासी नहीं माना। उनके साथ सदैव सहेलियों जैसा प्रेमपूर्ण व्यवहार किया। रानी ने तीनों को घुड़सवारी व शस्त्र चलाने में निपुण बना दिया था। सुन्दर घोड़े पर चढ़ना जानती थी, मुन्दर ने तलवार चलाना सीखा था और काशीबाई ने बन्दूक चलाना। इनका साहस और निर्भीकता को देख रानी लक्ष्मीबाई डाकू सागर सिंह को पकड़ने

के लिए इन्हें बरुआसागर ले गई थीं। उसे घेरकर कैदी के रूप में झाँसी लाई थीं। राजा गंगाधर राव की मृत्यु के पश्चात अंग्रेजी हुकूमत ने झाँसी राज्य का विलय अपने शासन में कर लिया। जब यह समाचार सुन्दर, मुन्दर और काशीबाई ने सुना तो वे तीनों अत्यधिक दुखी हुई और जब वे विश्राम के वक्त रानी लक्ष्मीबाई भेंट करने गईं तो दुःख के कारण तीनों ने अपने आभूषण उतार दिए। रानी की ये तीनों सहेलियाँ जहाँ रानी के लिए समर्पित थीं, वहीं वे देशभक्ति और स्वातंत्र्य भावना से भी परिपूर्ण थीं। जब रानी ने उन्हें धैर्य बँधाया कि हमें अपना साहस और धैर्य रखकर अंग्रेजों से अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए पूरी तरह तैयार होकर उन्हें मजा चखाना चाहिए तो वे तीनों उत्साह और जोश से भर उठीं और युद्ध के लिए रानी के आदेश की प्रतीक्षा करने लगीं। अब क्या था, रानी के सैन्य संचालन में रणभेरी बज चुकी थी। खबर पाते ही तात्या भी रानी की मदद के लिए आ पहुँचा। जैसे ही तात्या टोपे रानी की सहायता के लिए आगे बढ़ा कि टोरियों के बीच आते ही तात्या के दस्तों पर अंग्रेजी तोपखाने ने गोले बरसाए। गोले फूटकर तात्या के घुड़सवारों का सत्यानाश कर रहे थे। दस्तों के तितर-बितर होने पर एक ओर काशीबाई और एक ओर जूही हो गई। काशीबाई वाला दस्ता अंग्रेज घुड़सवारों के बीच फँस गया। पहले पिस्तौलें चलीं फिर तलवारें खींचीं। काशीबाई हर-हर महादेव कहकर शत्रुओं पर पिल पड़ी। अंग्रेज समझे कि झाँसी की रानी है, इसको जिन्दा पकड़ना चाहिए, परन्तु काशीबाई इतनी तेजी से युद्ध कर रही थी कि दो अंग्रेज सवार तो कट गए, परन्तु एक अंग्रेज सवार की तलवार से उसका कट गया। इस पर वह पैदल ही लड़ने लगी और उस बहादुर ने उस अवस्था में ही कई शत्रुओं को घायल कर दिया। इसी बीच काशीबाई के सिर पर तलवार पड़ी, लोहे की टोपी के कारण सिर बच गया और कन्धा कट गया, तब भी काशीबाई शिथिल नहीं हुई। फिर उस पर दूसरी तलवार पड़ी जिससे उनका अन्त हो गया। उस समय फिर उसके मुँह से निकला हर-हर महादेव। इस प्रकार काशीबाई झाँसी के संग्राम में मारी गई। तात्या टोपे पराजित होकर लौट गया। रानी ने युद्ध के लिए पूरी तैयारी कर रखी थी और ओरछा गेट की रक्षा के लिए दुल्हाजू को तैनात कर रखा था। सुन्दर उसके साथ थी, लेकिन दुल्हाजू और पीरअली राज्य में बड़ी जायदाद पाने की लालच में अंग्रेजों से मिल चुके थे। गोरी पल्टनें टिड्डी दल की तरह ओरछा फाटक पहुँचने के लिए दौड़ीं। दुल्हाजू ने फाटक पर लगे सारे ताले और सांकलें तोड़ डालीं। यह देख नंगी तलवारें लिए सुन्दर आ पहुँची। उसने दुल्हाजू से कड़ककर कहा, 'देशद्रोही, नरक के कीड़े तू अंग्रेजों से कुछ नहीं पाएगा।' सुन्दर दुल्हाजू पर पिल पड़ी। दुल्हाजू ने सुन्दर के पेट में छड़ अड़ा दी। सुन्दर के मुँह से हर-हर महादेव निकला था कि एक गोरे की गोली ने सौन्दर्यमयी सुन्दर को अमर बना दिया। जब रानी ने देखा कि अंग्रेज दुल्हाजू के विश्वासघात के कारण ओरछा गेट से शहर में प्रवेश कर रहे हैं, चारों तरफ नागरिकों को मौत के घाट उतारा जा रहा है तो वे अपने विशिष्ट सलाहकारों के परामर्श से 4 अप्रैल, 1858 की मध्यरात्रि को भाण्डेर होती हुई कोंच, कालपी पहुंचीं।

घोर संघर्ष के बाद उन्होंने ग्वालियर किले में अपना आधिपत्य जमा लिया। परन्तु ह्यूरोज उनका पीछा करता हुआ ग्वालियर जा पहुँचा। रानी ने किले से बाहर निकलकर घोर युद्ध किया। इस युद्ध में रानी की विश्वासपात्र मुन्दर भी साथ थीं। जब रानी युद्ध करते हुए आगे जा रही थीं तभी मुन्दर पर एक अंग्रेज सवार ने पिस्तौल दागी। उसके मुँह से केवल यह शब्द निकले 'बाई साहिबा मैं मरी।' यह देख बलवान रघुनाथ सिंह फुर्ती के साथ घोड़े से उतरा, अपना साफा फाड़ा मुन्दर के शव को पीठ पर कसा और घोड़े पर सवार होकर आगे बढ़ा। चिता चुनने के बाद लक्ष्मीबाई और मुन्दर के शवों को चिता पर देशमुख ने रख दिया। इस प्रकार रानी की विश्वासपात्र सहेलियाँ सुन्दर, मुन्दर और काशीबाई वीरांगना लक्ष्मीबाई के सैन्य संचालन में अंग्रेजों से युद्ध करते हुए मुल्क की आजादी के लिये कुर्बान हो गईं। यह अमर बलि**दान देशवासियों को संबल प्रदान करता रहेगा।"**[11]

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के नेतृत्व में हुई सन 1857 की क्रांति में बारे में इतिहासकारों के मतों को जानता भी जरूरी है। आइये देखते हैं इतिहासकारों की दृष्टि में सन 1857 की क्रांति -
द रिवोल्ट ऑफ हिन्दुस्तान, ईस्ट इंडिया कम्पनी, कोलकाता ने पृष्ठ 51 पर लिखा - "हिन्दुस्तान के विद्रोह के सम्बन्ध में समस्त यूरोप में केवल एक ही राय होनी चाहिए। विश्व के इतिहास में जितने भी विद्रोहों की चेष्टा की गई है, उनमें यह एक सबसे ज्यादा न्यायपूर्ण, भद्र और आवश्यक विद्रोह है। [12]

द फर्स्ट इंडियन वार ऑफ इंडिपेंडेंट्ट्व के पृष्ठ 57-59 में लिखा गया - "भारतीयों का विद्रोह अंग्रेजों द्वारा गरीब किसानों पर ढाए गए जुल्मों तथा सामान्य जनता पर लगाए जा रहे भारी करों के कारण हुआ। कलेक्टरों द्वारा क्रूरतम वसूली भी जन-विद्रोह का प्रमुख कारण रही।"[13]

डॉ० रामविलास शर्मा 'राज्य क्रान्ति' के पृष्ठ 531 में लिखते हैं - "'57 की क्रान्ति संसार की पहली साम्राज्य विरोधी, सामन्त विरोधी तथा 20वीं सदी की जनवादी क्रान्तियों की लम्बी और अपूर्ण श्रृंखला की पहली महत्त्वपूर्ण कड़ी भी है। "[14]

इतिहासकार आर० सी० मजूमदार कहते हैं - "1857 के विद्रोह को भारतीय इतिहास में ब्रिटिश शासन के लिए एक बड़ी सीधी तथा व्यापक चुनौती के रूप में देखा जाएगा। इसी कारण यह अर्द्धशताब्दी के बाद आरम्भ होने वाले सच्चे राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रेरक बना। ब्रिटिश शासन के हितों को 1857 की स्मृति ने ज्यादा हानि पहुँचाई।"[15]

राष्ट्रवादी इतिहासकार वीर सावरकर 'स्वतंत्रता संग्राम' में लिखते हैं - 'जब कभी देशी रियासतों के प्रमुख सामन्तों ने क्रान्ति 1857 में शामिल होने से इनकार किया तो उन्हीं रियासतों की जनता अनियंत्रित हो गई तथा शामिल न होने पर उसने सम्बन्धित प्रमुख सामन्तों की सत्ता को उखाड़ फेंकने की कोशिश की ताकि वे राष्ट्रीय संग्राम में सम्मिलित हो सकें।'[16]

निष्कर्ष - उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम लोग इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सन 1857 की क्रांति सत-प्रतिशत भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम था। इस स्वतंत्रता संग्राम की शुरूआत 5 जून सन 1857 को झाँसी की रानी वीरांगना लक्ष्मीबाई के नेतृत्त्व में झाँसी से हुई थी। इस क्रांति में झाँसी की वीरांगनाओं में झाँसी की रानी वीरांगना लक्ष्मीबाई, मोतीबाई, काशीबाई, सुंदर और मुंदर आदि का उल्लेखनीय योगदान रहा है।

संदर्भ -

[1] नगर निगम झाँसी, महारानी लक्ष्मीबाई पार्क में स्थापित झाँसी की रानी की मूर्ति पर उत्कीर्ण शिलालेख, झाँसी, अखंड बुंदेलखंड, भारत

[2] नंदकिशोर नवल (संपादक), स्वतंत्रता पुकारती, झाँसी की रानी (सुभद्रा कुमारी चौहान), साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, संस्करण 2006, पृष्ठ 198

[3] न्यूज 18 हिन्दी, झाँसी की रानी के बारे में क्या सोचते थे अंग्रेज, 18 जून 2022

[4] सुरेंद्र दुबे (संपादक), मेरी झाँसी, 1857 की अमर ज्योति वीरोत्तमा रानी लक्ष्मीबाई और उनकी झाँसी (जानकी शरण वर्मा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पृष्ठ 19

[5] सुरेंद्र दुबे (संपादक), मेरी झाँसी, 1857 की अमर ज्योति वीरोत्तमा रानी लक्ष्मीबाई और उनकी झाँसी (जानकी शरण वर्मा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पृष्ठ 26

[6] सुरेंद्र दुबे (संपादक), मेरी झाँसी, 1857 की अमर ज्योति वीरोत्तमा रानी लक्ष्मीबाई और उनकी झाँसी (जानकी शरण वर्मा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पृष्ठ 27

[7] सुरेंद्र दुबे (संपादक), मेरी झाँसी, 1857 की अमर ज्योति वीरोत्तमा रानी लक्ष्मीबाई और उनकी झाँसी (जानकी शरण वर्मा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पृष्ठ 27-29

[8] सुरेंद्र दुबे (संपादक), मेरी झाँसी, 1857 की अमर ज्योति वीरोत्तमा रानी लक्ष्मीबाई और उनकी झाँसी (जानकी शरण वर्मा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पृष्ठ 29

[9] संस्कृति मंत्रालय भारत सरकार, अनसंग हीरोज डिटैल, आजादी का अमृत महोत्सव पोर्टल, वीरांगना मोतीबाई, भारत सरकार
https://amritmahotsav.nic.in/unsung-heroes-detail.htm?5918

[10] गिरजाशंकर कुशवाहा, डिजिटल डिस्ट्रिक्ट रिपोजिटरी झाँसी, आजादी का अमृत महोत्सव पोर्टल, वीरांगना मोतीबाई, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 28 अगस्त 2023
https://amritmahotsav.nic.in/district-reopsitory-detail.htm?24114

[11] सुरेंद्र दुबे (संपादक), मेरी झाँसी, 1857 की अमर ज्योति वीरोत्तमा रानी लक्ष्मीबाई और उनकी झाँसी (जानकी शरण वर्मा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पृष्ठ 29-32

[12] सुरेंद्र दुबे (संपादक), मेरी झाँसी, 1857 की अमर ज्योति वीरोत्तमा रानी लक्ष्मीबाई और उनकी झाँसी (जानकी शरण वर्मा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पृष्ठ 33
[13] सुरेंद्र दुबे (संपादक), मेरी झाँसी, 1857 की अमर ज्योति वीरोत्तमा रानी लक्ष्मीबाई और उनकी झाँसी (जानकी शरण वर्मा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पृष्ठ 33
[14] सुरेंद्र दुबे (संपादक), मेरी झाँसी, 1857 की अमर ज्योति वीरोत्तमा रानी लक्ष्मीबाई और उनकी झाँसी (जानकी शरण वर्मा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पृष्ठ 33
[15] सुरेंद्र दुबे (संपादक), मेरी झाँसी, 1857 की अमर ज्योति वीरोत्तमा रानी लक्ष्मीबाई और उनकी झाँसी (जानकी शरण वर्मा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पृष्ठ 33
[16] सुरेंद्र दुबे (संपादक), मेरी झाँसी, 1857 की अमर ज्योति वीरोत्तमा रानी लक्ष्मीबाई और उनकी झाँसी (जानकी शरण वर्मा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पृष्ठ 33।